लोक साहित्य का वर्गीकरण

लोक-साहित्य को जन-जीवन का दर्पण कहा जाय तो इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। लोक-साहित्य जनता के हृदय का उद्‌गार है। सर्व-साधारण लोग जो कुछ सोचते हैं और जिस विषय की अनुभूति करते हैं उसी का प्रकाशन उनके साहित्य में पाया जाता है। ग्रामीण जनता विभिन्न संस्कारों और ऋतुओं में गीत गा-गा कर अपना मनोरंजन करती है। कहानियों को सुनना उनके मन-बहलाव का अनन्य साधन है। समय-समय पर चुभती हुई लोकोक्तियों और भाव-भरे मुहावरों का प्रयोग कर ग्रामीण जन अपने हृदयगत विचारों का प्रकाशन करते हैं। कुछ सूक्तियों में—जिनका निर्माण जनता के अनुभव पर आश्रित है—ऐसी अनुभूतियाँ पायी जाती हैं, जिनकी उपलब्धि अन्यत्र नहीं हो सकती है। इस प्रकार हम लोक साहित्य को प्रधानतया पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं:—

(१) लोक-गीत (Folk-lyrics), (२) लोक-गाथा (Folk-ballads), (३) लोक-कथा (Folk-tales), (४) लोक-नाट्य (Folk-drama), (५) लोक-सुभाषित (Folk-sayings)।

लोक-सुभाषित के अन्तर्गत मुहावरे, लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ, सुभाषित, बच्चों के गीत, पालने के गीत, खेल के गीत, अर्थहीन गीत इत्यादि आते हैं, जिनका व्यवहार गाँव के लोग अपने प्रतिदिन के व्यवहार में किया करते हैं।

लोक-गीतों के वर्गीकरण की पद्धति

1. लोक-गीत—लोक-साहित्य के अन्तर्गत लोकगीतों का प्रमुख स्थान है। जन-जीवन में अपनी प्रचुरता तथा व्यापकता के कारण इनकी प्रधानता स्वाभाविक है। लोक-साहित्य के जिन विभिन्न भेदों का उल्लेख पहिले किया गया है, उनमें पचास प्रतिशत से भी अधिक लोकगीतों की संख्या समझनी चाहिए। ये गीत विभिन्न उत्सवों तथा ऋतुओं में गाये जाते हैं। इनका विभाजन प्रधानतया निम्नलिखित आधार (क्राइटेरिया) पर किया जा सकता है।

(१) संस्कारों की दृष्टि से। (२) रसानुभूति की प्रणाली से। (३) ऋतुओं और व्रतों के क्रम से। (४) देवता सम्बन्धी गीतों की दृष्टि से (५) विभिन्न जातियों के प्रकार से। (६) श्रम-गीत की दृष्टि से।

१. संस्कारों की दृष्टि से—भारतीय जीवन में धर्म का प्रमुख स्थान है। यदि यह कहा जाय कि भारतीय लोगों का धर्म ही प्राण है तो इसमें कुछ अतिशयोक्ति न होगी। हमारे जीवन में धर्म का स्थान कितनी महत्ता रखता है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। जन्म के पहिले से लेकर मत्यु के बाद तक इस देश के लोगों का जीवन संस्कारों से सम्बद्ध है। हमारे धर्मशास्त्रियों ने इस संस्कारों का विधान किया है, जिनमें गर्भाधान, पुंसवन, पुत्र- जन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना और मृत्यु प्रधान हैं। इनमें भी प्रथम दो संस्कारों की प्रथा अब नहीं है। शेष छः

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

संस्कार ही आजकल प्रधान रूप से किये जाते हैं। इन विभिन्न संस्कारों के अवसर पर स्त्रियाँ अपने कोमल कण्ठ से गीत गा-गाकर जन-मन का अनुरंजन किया करती हैं। मृत्यु के अवसर के गीत बड़े ही कारुणिक तथा हृदय-विदारक होते हैं। किसी प्रिय व्यक्ति, पति या पुत्र के मरने पर उसकी स्त्री या माता उस मृतात्मा के गुणों का वर्णन करती हुई रोती और विलाप करती है। परन्तु ऐसे गीतों की संख्या अधिक नहीं है।

२. रसानुभूति की प्रणाली से—लोकगीतों में अनेक रसों की अभिव्यक्ति बड़ी ही सुन्दर रीति से हुई है। इन गीतों में विभिन्न रसों की जो अविरल धारा प्रवाहित होती है उसका स्रोत कदापि नहीं सूख सकता। यों तो इन गीतों में सभी रसों की उपलब्धि होती है परन्तु निम्नांकित पाँच रसों की ही प्रधानता पायी जाती है।

(१) श्रृंगार रस, (२) करुण रस, (३) वीर रस, (४) हास्य रस (५) शान्त रस।

श्रृंगार रस के अन्तर्गत विशेष कर सोहर, जनेऊ, विवाह, झूमर और वैवाहिक परिहास के गीत आते हैं। सोहर के गीतों में गर्भिणी स्त्री की शरीर-यष्टि का बड़ा सुन्दर वर्णन पाया जाता है। गर्भिणी होने पर स्त्रियों का शरीर पीला पड़ जाता है, पयोधर स्थूलता को प्राप्त करते हैं, अंगों में कृशता आ जाती है। इन विषयों का वर्णन लोकगीतों में हुआ है। यदि इस समय पति परदेश गया होता है तो उसके वियोग में वह स्त्री अत्यन्त दुःखी दिखायी पड़ती है। उसका एक-एक क्षण एक युग के समान बीतता है। पति-वियोग के साथ मिलकर उसकी प्रसव पीड़ा सौ-गुनी हो जाती है। इन गीतों में संयोग तथा विप्रलम्भ दोनों प्रकार के श्रृंगार का वर्णन पाया जाता है। झूमर के गीतों में श्रृंगार रस प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है।

करुण रस के गीतों में गवना, जँतसार, निर्गुन, पूरबी, रोपनी तथा सोहनी के गीतों की गणना की जा सकती है। इन गीतों से करुण रस छलका पड़ता है। यद्यपि उपर्युक्त सभी गीत करुण रस से ओतप्रोत हैं, परन्तु गवना के गीतों में करुण रस बरसाती नदी की भाँति उमड़ता हुआ दिखाई पड़ता है। लड़की की विदाई के समय जो गीत गाये जाते हैं वे बड़े ही हृदयद्रावी होते हैं। गवना के ये गीत क्या हैं करुण रस के सागर हैं जो पाठकों को रस-मग्न कर देते हैं। इसी प्रकार जँतसार, निर्गुन, पूरबी और सोहनी के गीतों को भी समझना चाहिए, जिनका विस्तृत वर्णन यथास्थान किया जायेगा।

इन गेय-गीतों के अतिरिक्त कुछ प्रबन्धात्मक गीत भी पाये जाते हैं, जिनकी रचना किसी विशेष घटना को लेकर पद्यबद्ध रीति से की गयी है। इन गीतों को 'लोक-गाथा' का नाम दिया गया है। आल्हा, विजयमल, लोरकी, सोरठी, नयकवा, बनजारा, गोपीचन्द, भरथरी और ढोला-मारू के गीत इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। पंजाब में राजा रसालू का गीत प्रसिद्ध है। आल्हा वीर रस का महाकाव्य है जिसके प्रत्येक पद में वीरता कूट-कूट कर भरी हुई है। सोरठी में रहस्य और रोमांच की कथा का वर्णन बड़ी सुन्दर रीति से किया गया है। विजयमल में कुँवर, विजयी नामक किसी वीर की कथा वीर रस में वर्णित है। राजा रसालू के विषय में भी यही बात समझनी चाहिए।

लोक गीतों में हास्य रस की मात्रा अपेक्षा कृत कम पायी जाती है। वैवाहिक परिहास के

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

गीतों में हास्य रस की मधुर व्यंजना हुई है। झूमर के गीतों—जिनका नामकरण इन्हें झूम-झूम कर गाने से हुआ है—में भी हास्य का पुट उपलब्ध होता है। इनमें कहीं तो अपने प्रियतम कोई फबती कसी जाती है तो कहीं देवर से हँसी-मजाक का अवसर उपस्थित किया जाता है।

भजन, निर्गुन, तुलसी माता और गंगा मइया के गीतों में शान्त रस पाया जाता है। संध्या समय तथा रात्रि के पिछले प्रहर में स्त्रियाँ भजन गाती हैं जिन्हें क्रमशः 'संझा' और 'परातीं' कहते हैं। इन गीतों में भगवान् की स्तुति होती है। प्रातःकाल गंगा स्नान के लिए झुण्ड में जाती हुई स्त्रियाँ गंगा जी के गीत गाती हैं, जिनमें संसार के झंझटों से मन को हटाकर भगवान् में उसे लगाने का वर्णन रहता है। इन गीतों को सुनकर मन में भक्ति का उद्रेक होता है।

३. ऋतुओं और व्रतों के क्रम से—लोकगीतों की मीमांसा करने पर यह पता चलता है कि इनमें से अधिकांश गीत किसी न किसी ऋतु या त्योहार से सम्बन्ध रखते हैं। वर्षा, वसन्त आदि ऋतुओं के आने पर जन-जीवन में जो नवीन उल्लास उत्पन्न होता है, उसकी अभिव्यक्ति लोक-गीतों में पायी जाती है। यदि वर्षा (आषाढ़) के दिनों में किसान आल्हा गा-गाकर अपना मनोरंजन करता है, तो सावन में कजली गाकर अपने दिल के दर्द को दूर करता है। यदि फागुन के महीने में होली या फगुआ के गीतों द्वारा वह अपने हृदयगत उल्लास को प्रकट करता है तो चैत में 'चैता' या 'घांटों' गाकर वह आत्मविभोर हो जाता है।

विभिन्न व्रतों के अवसर पर विभिन्न गीत गाये जाते हैं। श्रावण शुक्ला पंचमी-नाग पंचमी के अवसर पर नाग (सर्प) देवता सम्बन्धी गीत गाये जाते हैं। भाद्र मास कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को 'बहुरा' का व्रत और कार्तिक शुक्ल द्वितीया को 'गोधन' की पूजा की जाती है। इन अवसरों पर स्त्रियाँ गीत गाकर अपने-अपने इष्टदेवता से अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति की प्रार्थना करती हैं। शायद ही कोई ऐसा त्योहार हो जिस समय कोई गीत न गाया जाता हो।

४. देवता सम्बन्धी गीतों की दृष्टि से— भारत के विभिन्न धर्मों तथा सम्प्रदायों में भिन्न-भिन्न देवताओं की आराधना तथा पूजा की जाती है। इनकी स्तुति में गीत गाये जाते हैं। राम, कृष्ण, हनुमान् तथा गंगा माता सम्बन्धी गीत इसी कोटि में आते हैं। देवताओं की स्तुति में जो निर्गुन और भजन गाये जाते हैं उनका अन्तर्भाव इसी श्रेणी में किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त छठी माता, गंगा माता तथा शीतला माता सम्बन्धी गीत भी इसी श्रेणी से सम्बन्धित हैं। उत्तर प्रदेश के उत्तरा खण्ड में प्रचलित जागर-गीतों का गान विभिन्न देवताओं की स्तुति में किया जाता है। भारत के अन्य प्रान्तों में भी विभिन्न देवताओं को प्रसन्न करने के लिए गीतों के गाने की परम्परा प्रचलित है। इस प्रकार से लोकगीतों का एक बहुत बड़ा सम्प्रदाय देवताओं से संबंधित है। संभवतः ऐसा कोई भी राज्य या प्रदेश नहीं है जिसमें देवता सम्बन्धी गीत प्रचलित न हों। आदिवासियों के लोकगीतों में भी देवताओं के गीतों की प्रधानता पायी जाती है। अतः देवता सम्बन्धी गीतों की एक पृथक श्रेणी या वर्ग है।

५. विभिन्न जातियों के प्रकार से- कुछ ऐसे भी गीत हैं जिन्हें कुछ विशिष्ट जातियाँ ही गाती हैं। उदाहरण के लिए बिरहा को लिया जा सकता है। यह गीत अहीर जाति के लोगों का राष्ट्रीय या जातीय गीत है। अहीर लोग जिस भावभंगी तथा जोश के साथ इसे गाते हैं उस

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

प्रकार से दूसरा कोई नहीं गा सकता है। जो अहीर बिरहा गाने में जितना ही प्रवीण होता है, वह उतना ही योग्य समझा जाता है। इस जाति के लोगों में विवाह के अवसर पर वर की योग्यता उसके बिरहा गाने पर ही आश्रित होती है।

'पचरा' नामक गीत को दुःसाध नामक जाति के लोग प्रायः गाया करते हैं। जब इस जाति का कोई व्यक्ति बीमार पड़ जाता है, तब इस जाति का कोई बूढ़ा बुलाया जाता है। वह रोगी के पास बैठकर 'पचरा' गा-गाकर देवी का आह्वान करता है। इस प्रकार कई दिन ऐसी प्रक्रिया करने से रोगी का रोग दूर हो जाता है, ऐसा उनका विश्वास है।

वर्षा ऋतु में एक विशेष जाति के लोग (नट) ढोल को गले में बाँधकर 'आल्हा' गाते फिरते हैं। इस प्रकार भिक्षा का आयोजन करना उनका व्यवसाय हो गया है। गेरुआ वस्त्र को धारण करने वाले कुछ साधु—जो 'साँई' के नाम से प्रसिद्ध है—सारंगी के ऊपर गोपीचन्द और भरथरी के गीत गाते फिरते हैं। यह कार्य उनकी 'उदर-पूर्ति' का प्रधान साधन बन गया है। मालो लोग शीतला माता के गीत गाते हैं।

६. श्रम-गीत की दृष्टि से—कुछ ऐसे भी गीत गाये जाते हैं, जो किसी विशेष कार्य करते समय गाये जाते हैं। उदाहरण के लिए धान को रोपते समय स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं, उन्हें 'रोपनी' के गीत, कहते हैं। इसी प्रकार खेत को निराते समय या सोहते समय जो गीत गाये जाते हैं, वे 'निरवाही' या 'सोहनी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'जँतसार' उन गीतों को कहा जाता है जिन्हें जाँत पीसते समय स्त्रियाँ गाती हैं। तेली तेल को 'पेरते' समय अपने हृदय के भावों का मन्थन करता हुआ जिन पदों को सस्वर रूप से गाता है, उन्हें 'कोल्हू के गीत' की संज्ञा दी गयी है। चूंकि ये गीत एक विशेष कार्य-श्रम को करते समय गाये जाते हैं, अतः इन्हें श्रम-गीतों की श्रेणी में रखा गया है। इन गीतों के गाने से काम करने से उत्पन्न थकावट दूर होती जाती है और साथ ही उस काम को करने में मन भी लगा रहता है।

उपर्युक्त लोकगीतों के वर्गीकरण को निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

२. लोकगाथा—पिछले अध्याय में लोक-साहित्य का विभाजन करते हुए उसका वर्गीकरण लोकगीत और लोकगाथा के रूप में किया गया है। लोकगीत वे गीत हैं जिनमें कथानक प्रायः स्वल्प होता है। गेयता ही उनका प्रधान गुण है, परन्तु लोकगाथाओं में कथावस्तु की ही प्रधानता

Scanned with CamScanner
Scanned with CamScanner

होती है। गेयता उसमें गौण स्थान रखती है। आकार की दृष्टि से भी दोनों में भेद पाया जाता है। लोकगीत छोटे-छोटे होते हैं, परन्तु लोकगाथा अपने कथानक के कारण बहुत बड़ी होती है। पहले को हम गीति-काव्य और दूसरे को प्रबंध-काव्य कह सकते हैं। कजली, होली, चैता, सोहर, जँतसार, भजन और पराती आदि गीति-काव्य की कोटि में रखे जा सकते हैं और आल्हा, विजयमल, लोरिक, हीररांझा, ढोला-मारू, राजा रसालू के गीतों को प्रबन्ध-काव्य कहा जा सकता है। अंग्रेजी में लोकगीत को 'फोक-सांग लिरिक' और प्रबन्ध-काव्य को 'फोक-बैलेड' कहा जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोकगीत और लोकगाथा में विषयगत और स्वरूपगत दोनों प्रकार की विभिन्नता पायी जाती है। लोकगीतों में साधारणतया श्रृंगार और करुण रस की प्रधानता पायी जाती है,परन्तु लोकगाथाओं का प्रधान रस प्रायः वीर हुआ करता है। 'ढोला मारू रा दूहा' इस नियम का अपवाद समझना चाहिए।

अंग्रेजी विद्वानों द्वारा बैलेड की जो परिभाषा बतलायी गई है, उसकी पर्यालोचना करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बैलेड में कथानक और गेयता दोनों विद्यमान रहती है। लोकगाथाओं के भी ये ही दोनों आवश्यक तत्व हैं इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। अतः लोकगाथा वह कथा है जो गीतों में कही गयी हो।

बैलेड के लिए 'गाथा' शब्द की सार्थकता

श्री सूर्यकरण पारीक ने ग्रामगीत और लोकगीत में पार्थक्य दिखलाने का प्रयास किया है। उन्होंने बैलेड शब्द के लिए "गीत-कथा" का प्रयोग किया है।[१] परन्तु प्रस्तुत लेखक की विनम्र सम्मति में बैलेड के लिए 'लोकगाथा' शब्द का प्रयोग अधिक समीचीन है। संस्कृत साहित्य में 'गाथा' शब्द का प्रयोग गेय पदावली (लिरिक्स) के अर्थ में प्राचीन काल से होता चला आया है। हाल की 'गाथा सप्तशती'—जिसमें श्रृंगार रस से भरी सात सौ आर्याओं का संग्रह है—इसका उदाहरण है। पालि साहित्य में भी गाथा का अर्थ यही पाया जाता है। 'पालि जातकावलि' के सिंह चर्म जातक में आगे दिये हुये श्लोकों को गाथा के उदाहरण में उद्धृत किया गया है—[२]

"नेतं सीहस्स नदितं न व्यग्घस्स न दीपिनो।
पारुतो सीहचम्मेन जम्मो नदति गद्रभो ।।"
"चिरं पि खो तं खादेय्य गद्रभो हरितं यवं ।
पारुतो सीहचम्मेन रवामानों च दूसयी ।।"

वैदिक साहित्य में 'गाथिन्' शब्द का प्रयोग उस व्यक्ति के लिए किया गया पाया जाता है जो किसी प्राचीन आख्यान या कथा को कहने वाला हो।[३]

---

१. पारीक : राजस्थानी लोकगीत, पृ० ७८-८५।
२. पालि जातकावलि।
३. ऋग्वेद १।७।१।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

पृष्ठों में छपा है। 'ढोला मारू रा दूहा' के सम्बन्ध में भी यही बात समझनी चाहिए। सोरठी और विजयमल का कथानक भी बहुत लम्बा है। कुछ लोकगाथाओं का आकार छोटा भी होता है—जैसे 'क्षत्रियाणी भगवती' परन्तु इनकी संख्या बहुत थोड़ी है।

दूसरा भेद विषयगत है। लोकगीतों में विभिन्न संस्कारों—पुत्र-जन्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना; ऋतुओं—वर्षा, वसन्त, ग्रीष्म, और पर्वों पर गाये जाने वाले गीत सम्मिलित हैं जिनमें घर-गृहस्थी, प्रेम-विरह, वन्ध्या, विधवा आदि के सुख-दुःखों के वर्णन की प्रधानता ही उपलब्ध होती है। कहीं कोई विधवा स्त्री अपने भाग्य को कोसती है तो कहीं किसी वन्ध्या स्त्री का करुण प्रलाप सुनाई पड़ता है। कहने का आशय यह है कि घर के संकुचित क्षेत्र में जीवन की जिन अनुभूतियों का साक्षात्कार मनुष्य करता है, उन्हीं की झाँकी हमें इन लोकगीतों में देखने को मिलती है। परन्तु लोकगाथाओं का विषय लोकगीतों से कुछ भिन्न है। इसमें संदेह नहीं कि इन गाथाओं में भी प्रेम का गहरा पुट रहता है, लेकिन यह प्रेम जीवन के संघर्षों का सामना करता हुआ भी, अन्त में सफलीभूत होता हुआ दिखलाया गया है। इन गाथाओं में वीरता, साहस, रहस्य एवं रोमांच का अंश अधिक पाया जाता है। उदाहरण के लिए आल्हखण्ड में माड़ोगढ़ की लड़ाई का वर्णन उपलब्ध होता है तो 'सोरठी' की गाथा में रहस्य और रोमांच की प्राप्ति होती है। कहीं-कहीं इन गाथाओं में अनेक वीर पुरुष लोकत्राता या जनरक्षक के रूप में अंकित किये गये हैं। अनेक गीतों में मुगलों के अत्याचार से स्त्रियों को बचाने के लिए त्यागी वीरों ने अपने प्राणों की आहुति तक दे दी है। इस प्रकार लोकगीतों और लोकगाथाओं का पार्थक्य स्पष्ट है।

३. लोककथा—लोकसाहित्य के वर्गीकरण में लोककथाओं का प्रमुख स्थान है। ये अपनी सरसता और लोकप्रियता के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। माताएँ सुन्दर कहानियाँ सुना कर अपने बच्चों को आनन्द प्रदान करती हैं। बालक इन कहानियों को सुनते-सुनते निद्रा देवी की गोद में चले जाते हैं। बालिकाएँ अपने भाई की सुख और समृद्धि के लिए पिंड़िया का व्रत करती हैं और कार्तिक में भ्रातृ-द्वितीया से लेकर अगहन की शुक्लपक्ष की दूज तक—पूरे एक महीने तक—नियमित रूप से पिंड़िया की कथा रात्रि में सुनती हैं। प्रातःकाल में इस कथा को सुने बिना वे अन्न ग्रहण नहीं कर सकतीं। प्रत्येक व्रत के अवसर पर किसी न किसी देवी-देवता की कथा कही जाती है। त्रिलोकीनाथ की कथा अब गाँवों में सत्यनारायण की कथा का स्थान लेने जा रही है। जाड़े की रात्रियों में चौपाल में बैठकर ग्राम-वृद्ध, रोचक कहानियों को सुनाकर बालकों का मनोरंजन किया करते हैं। शीत से रक्षा के लिए अग्नि को प्रज्वलित कर उसके चारों ओर बैठकर आग 'तापने' वाले ग्रामीण जन लोक-कहानियों को सुनाकर जनता का दिल बहलाते हैं। खेतों में पशुओं को चराने वाले चरवाहे किसी वृक्ष की शीतल छाया में एकत्र बैठकर छोटी-छोटी चुटीली कहानियों के द्वारा समय बिताते हैं। कहने का आशय यह है कि लोक-जीवन इन लोककथाओं द्वारा पूर्ण रूप से अनुस्यूत है।

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner

४. लोकनाट्य—नाटक में गीत, नृत्य और संगीत की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। गीत के साथ संगीत की योजना बड़ा आनन्द प्रदान करती है, परन्तु इसके साथ ही यदि नृत्य भी हुआ तो आनन्द की सीमा नहीं रहती। महाकवि कालिदास ने ठीक ही कहा है कि नाट्य जन-मन अनुरंजन का सर्वोत्कृष्ट साधन है।[१] ग्रामीण जनता नाट्य कोदेखकर प्रसन्नता का जितना अनुभव करती है उतना अन्य किसी वस्तु से नहीं। भोजपुरी प्रदेश में भिखारी ठाकुर का लिखा हुआ 'विदेसिया' बड़ा लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध लोकनाट्य है, जिसमें परदेश में गये हुए पति का वर्णन है। उसके वियोग में उसकी स्त्री अनन्त कष्टों का अनुभव करती है और अपने दुःखों को लिपिबद्ध कर वह अपने परदेशी पति के पास भिजवाती है, जिसे पढ़कर वह घर लौट आता है। 'विदेसिया' नाटक की संक्षेप में यही कथा है।

भिखारी स्वयं पहले इस नाटक का अभिनय किया करता था जिसे देखने के लिए हजारों आदमियों की भीड़ इकट्ठी होती थी। दस-दस और पन्द्रह-पन्द्रह मील से लोग पैदल चलकर 'विदेसिया' नाटक को देखने के लिए आया करते थे। जनता, दर्शकों की उमड़ती हुई भीड़ को नियन्त्रित करने के लिए अधिकारियों को पुलिस का प्रबन्ध करना पड़ता था। अब उसके अनुयायियों ने अनेक मण्डलियों की स्थापना कर 'विदेसिया' के अभिनय की परम्परा को कायम रखा है। यह लोकनाट्य बड़ा ही लोकप्रिय सिद्ध हुआ है।

गुजरात में 'गर्बा' नामक लोकनृत्य बड़ा प्रसिद्ध है, जिसमें गीत और संगीत का सुन्दर सामजस्य पाया जाता है। गुजराती लोकसाहित्य के आचार्य श्री झबेरचन्द मेघाणी ने इस लोक-नृत्य को गीत-संगीत-नृत्य की त्रिवेणी कहा है। युवती स्त्रियाँ अथवा लड़कियाँ समुदाय में इस नृत्य का अभिनय करती हैं, जो बड़ा ही मनोरंजक होता है।

इसी प्रकार मालवा में 'माँच' नामक लोकनृत्य प्रसिद्ध है जिसका अभिनय देखने के लिए जनता की बड़ी भीड़ एकत्र हुआ करती है। इन लोकनृत्यों का अध्ययन बड़ा ही रुचिकर और मनोरंजनकारी है।

५. लोक सुभाषित—ग्रामीण जनता अपने दैनिक व्यवहार में सैकड़ों मुहावरों, कहावतों, पहेलियों, सूक्तियों और सुभाषितों का प्रयोग करती है। इन मुहावरों और कहावतों में चिरसंचित अनुभूत-ज्ञान-राशि भरी पड़ी है। इनके अध्ययन से हमारी सामाजिक और धार्मिक प्रथाओं का चित्रण उपलब्ध होता है, जिनका विस्तृत विवेचन यथावसर किया जायेगा। कुछ ऐसी भी सूक्तियाँ उपलब्ध होती हैं जिनमें नीति के वचन कहे गये हैं। घाघ और भड्डरी की उक्तियों में ऋतुविज्ञान की बहुमूल्य सामग्री पायी जाती है। खेती और वर्षा के सम्बन्ध में घाघ की जो उक्तियाँ प्रसिद्ध हैं, उनमें स्वानुभूति की मात्रा अत्यधिक है। पशुओं की पहचान भी घाघ को अच्छी थी। उन्होंने अच्छे या बुरे पशुओं की जो पहिचान बतलायी है, वह बिल्कुल ठीक है। पालने के गीत तथा

Scanned with CamScanner

Scanned with CamScanner